# मंत्र रहस्य: मन की शांति से शिवत्व तक

**मन स्वभाव से चंचल है और निरंतर इच्छाओं व विचारों के कारण अशांत रहता है। मंत्र-जप की पुनरावृत्ति मन के विचार-प्रवाह को शांत कर उसे स्थिर, निर्मल और एकाग्र बनाती है।**

**मंत्र केवल शब्द नहीं, बल्कि दिव्य चेतना से जुड़ने का माध्यम है, जो साधक के भीतर विद्या, विवेक और आत्मबोध का विकास करता है। जब यह विद्या अंतःकरण में परिपक्व होती है, तब साधक को सूक्ष्म अनुभूतियां प्राप्त होने लगती हैं और उसका चित्त उच्च चेतना की ओर अग्रसर होता है।**

**मंत्र-साधना का परम उद्देश्य है - मन की शांति, आत्मजागरण और शिवत्व की प्राप्ति...**

**मन को शांत करने के सूत्र हैं -**

*चित्तं मन्त्रः।।*

मंत्र का मूल तत्व है - पुनरावृत्ति। निरंतर दोहराव के माध्यम से मन को शांत किया जाता है। हमारे मन में हर समय विचारों का एक अनवरत प्रवाह चलता रहता है, विचारों की विविधता का प्रवाह होता है। प्रत्येक विचार हमारी मानसिक शांति पर एक प्रहार करता है। यदि हम एक क्षण के लिए अपने भीतर झांकें, तो पाएंगे कि वहां विचारों का मानो ट्रैफिक जाम लगा हुआ है। एक विचार समाप्त भी नहीं होता कि दूसरा आकर खड़ा हो जाता है।

इसी कारण हमारा मन अत्यंत चंचल और अस्थिर बना रहता है। कभी हम किसी व्यक्ति के घोर विरोध में होते हैं, और कुछ ही समय बाद उसी के पक्ष में खड़े दिखाई देते हैं। कभी कोई बात हमें अत्यधिक प्रसन्न कर देती है, तो वही बात थोड़ी देर बाद महत्वहीन लगने लगती है। मन का यह असंतुलन ही उसकी सबसे बड़ी कमजोरी है। ऐसा मन विश्वास के योग्य नहीं होता, क्योंकि वह परिस्थितियों के साथ निरंतर बदलता रहता है।

मन का वास्तविक स्वरूप तभी प्रकट होता है जब वह शांत हो जाता है। शांति की अवस्था में ही मन निर्मल दर्पण की भांति बन जाता है, जिसमें हमारा वास्तविक स्वरूप प्रतिबिंबित होता है। जब तक विचारों का कोलाहल चलता रहता है, तब तक हम स्वयं को नहीं, बल्कि केवल अपने विचारों को ही देखते रहते हैं।

अब प्रश्न उठता है कि कैसे जाना जाए कि मन वास्तव में शांत है?

शांत मन शीघ्रता से असंतुलित नहीं होता। वह छोटी-छोटी बातों पर विचलित नहीं होता। वह पल भर में क्रोधित और अगले ही पल प्रसन्न नहीं हो जाता। परिस्थितियां बदलती रहती हैं, लोग बदलते रहते हैं, संसार बदलता रहता है, परंतु शांत मन अपनी स्थिरता बनाए रखता है। उसका निर्णय आवेश से नहीं, विवेक से होता है। उसके भीतर प्रतिक्रियाएं नहीं, बल्कि सजग उत्तर जन्म लेते हैं।

यही मंत्र-जप का उद्देश्य है। मंत्र की पुनरावृत्ति केवल शब्दों को दोहराना नहीं है, बल्कि विचारों की भीड़ को धीरे-धीरे विराम देना है। जब विचारों का शोर कम होने लगता है, तब मन शांत होता है; और जब मन शांत होता है, तभी मनुष्य अपने भीतर स्थित उस असीम शक्ति का अनुभव कर पाता है, जो सदैव से उसके भीतर विद्यमान थी।

*प्रयत्नः साधकः।।*

**मन का स्वभाव है कि वह दुःख ढूंढ़ता है। उसका ध्यान सदैव उस पर केंद्रित रहता है जो उसे मिला नहीं है। इसी कारण मन की अशांति आज एक महामारी का रूप ले चुकी है।**

प्रयत्नशील होना ही साधना है। साधना का अर्थ केवल पूजा-पाठ, जप या ध्यान नहीं है; साधना का वास्तविक अर्थ है निरंतर प्रयत्न करते रहना। यदि जीवन का कोई एक उद्देश्य बताया जाए, तो वह यही है कि मनुष्य कभी प्रयत्न करना न छोड़े।

अनेक बार ऐसा होता है कि हम इसलिए हार जाते हैं, क्योंकि जब हम सफलता के सबसे निकट पहुंच चुके होते हैं, उसी समय प्रयास करना बंद कर देते हैं। हम समझते हैं कि अब कुछ नहीं होगा, जबकि संभव है कि अगला ही प्रयास हमें सफलता के शिखर तक पहुंचा देता। इसलिए प्रयत्नशीलता ही वह शक्ति है, जो मनुष्य को उसकी मंजिल तक ले जाती है।

साधना का उद्देश्य भी यही है कि मनुष्य के भीतर निरंतर प्रयास करने का स्वभाव विकसित हो। इसी सत्य को कबीरदास ने अत्यंत सरल शब्दों में कहा है

*करत-करत अभ्यास ते जड़मति होत सुजान।*
*रसरी आवत-जात ते सिल पर पड़त निशान।।*

अर्थात् निरंतर अभ्यास करते रहने से मंद बुद्धि वाला व्यक्ति भी बुद्धिमान बन जाता है। जैसे कुएं से पानी खींचने वाली रस्सी के बार-बार आने-जाने से कठोर पत्थर पर भी निशान पड़ जाते हैं, वैसे ही सतत प्रयास असंभव प्रतीत होने वाले कार्य को भी संभव बना देता है।

चाहे विद्या अर्जित करनी हो, धन का उपार्जन करना हो, या उत्तम स्वास्थ्य प्राप्त करना हो। इनमें से कोई भी उपलब्धि बिना प्रयत्न के संभव नहीं है। प्रत्येक सफलता के पीछे निरंतर किया गया अभ्यास और अनुशासित प्रयास छिपा होता है।

स्वास्थ्य भी इसका अपवाद नहीं है। **बहुत से लोग चाहते हैं कि वे स्वस्थ रहें, परन्तु केवल इच्छा से स्वास्थ्य प्राप्त नहीं होता। उसके लिए एक निश्चित दिनचर्या चाहिए। समय पर सोना, समय पर जागना, संतुलित भोजन करना, नियमित व्यायाम करना और जीवन में अनुशासन बनाए रखना आवश्यक है। स्वास्थ्य किसी संयोग का परिणाम नहीं, बल्कि सतत् प्रयत्न का फल है।**

**प्रयत्न शब्द का अर्थ ही है - विशेष प्रकार का यत्न, अर्थात् पूरी निष्ठा और समर्पण के साथ लगातार प्रयास करते रहना। यही प्रयास मनुष्य की सबसे बड़ी विशेषता है। पशु परिस्थितियों के अनुसार जीते हैं, पर मनुष्य परिस्थितियों को बदलने का सामर्थ्य रखता है, क्योंकि वह प्रयत्न कर सकता है।**

इसलिए जब तक जीवन है, तब तक प्रयास है; और जब तक प्रयास है, तब तक संभावना है। जो व्यक्ति प्रयत्न करना नहीं छोड़ता, अंततः वही अपने जीवन को साध लेता है और वही वास्तविक सफलता का अधिकारी बनता है।

*विद्याशरीरसत्ता मन्त्र रहस्यम्।।*

विद्या मनुष्य का आंतरिक धन है, जबकि लक्ष्मी बाह्य धन है। बाह्य धन का हरण हो सकता है, वह नष्ट हो सकता है, छिन सकता है; परन्तु विद्या ऐसा धन है जिसे कोई चुरा नहीं सकता। यही कारण है कि शास्त्रों में विद्या को सर्वोच्च सम्पदा कहा गया है।

मंत्र वह सेतु है जो साधक को विद्या के समीप ले जाता है। वह केवल शब्दों का समूह नहीं, बल्कि चेतना को जाग्रत करने का माध्यम है। विद्या की प्राप्ति में सबसे बड़ी बाधा मन की चंचलता है। चंचल मन न तो किसी विषय पर स्थिर हो पाता है और न ही आत्मज्ञान की दिशा में अग्रसर हो सकता है। इसलिए मंत्र-जप का प्रमुख उद्देश्य मन को शांत करना, उसकी चंचलता का क्षय करना और ध्यान को बाह्य जगत से हटाकर अंतर्मन की ओर मोड़ना है।

जब तक हमारा ध्यान शरीर की सत्ता पर केंद्रित रहता है, तब तक हमारी अनुभूतियां लक्ष्मी की ओर उन्मुख रहती हैं। हमारा अधिकांश समय शरीर को सजाने-संवारने, उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति करने और बाह्य सुख-सुविधाओं को बढ़ाने में व्यतीत होता है। यह भी आवश्यक है, परंतु यही जीवन का अंतिम लक्ष्य नहीं है।

जैसे ही ध्यान भीतर की ओर प्रवाहित होता है, विद्या का विराट संसार साधक को अपनी ओर आमंत्रित करने लगता है। तब मनुष्य बाह्य संपदा से अधिक आंतरिक समृद्धि का अनुभव करने लगता है। उसे यह ज्ञात होने लगता है कि वास्तविक वैभव ज्ञान, विवेक और आत्मबोध में निहित है।

मंत्र-जप इस संपूर्ण प्रक्रिया का आधार है। वह न केवल ध्यान प्राप्त करने में सहायक है, बल्कि प्राप्त हुए ध्यान को स्थिर बनाए रखने का भी सबसे प्रभावी साधन है। निरंतर

**मंत्र ध्वनि-रूप में प्रकट हुई एक दिव्य शक्ति है।**

**मंत्र चेतना का वाहक है। दृढ़ विश्वास भाव और साधना के साथ किया गया मंत्र-जप साधक के भीतर छिपी दिव्य चेतना को जागृत करता है और उसे उच्च आध्यात्मिक विकास की ओर ले जाता है।**

**मंत्र, गुरु और आत्मचिंतन - ये तीनों साधना के प्रमुख आधार हैं। मंत्र-जप चित्त की शुद्धि करता है, जिससे आत्मज्ञान की प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त होता है।**

**चित्त बाहरी विकर्षणों से मुक्त होकर भीतर की ओर मुड़ने लगता है...**



- सद्गुरुदेव नन्द किशोर जी श्रीमाली

मंत्र-जप से मन एकाग्र होता है, चित्त निर्मल होता है और साधक क्रमशः उस विद्या के निकट पहुंचता है, जो उसके जीवन को भीतर से प्रकाशित कर देती है।

मंत्र जप में उच्चारण और पुनरावृत्ति का विशेष स्थान है। मंत्र देवता का शाब्दिक स्वरूप है। देवता दिव्य ऊर्जा की ही अभिव्यक्ति हैं। मंत्र के माध्यम से हम उस दिव्य ऊर्जा, उसी देवता का अपने जीवन में निमंत्रण करते हैं।

इसीलिए साधना में मंत्र-जप केवल निश्चित समय तक सीमित नहीं रहना चाहिए, बल्कि वह मन में निरंतर करते रहना चाहिए। जब जप अखंड हो जाता है, तब साधक और मंत्र के बीच का भेद धीरे-धीरे मिटने लगता है। मंत्र-जप के माध्यम से साधक देवता के गुणों, उनके तेज, उनके भाव और उनकी चेतना को अपने भीतर आत्मसात करता है।

मंत्र से प्राप्त होने वाली विद्या साधक के भीतर जीवित हो जाती है। तब वह केवल स्मृति का विषय नहीं रहती, बल्कि उसके चेतन अस्तित्व का अभिन्न अंग बन जाती है। उस अवस्था में मंत्र केवल ध्वनि नहीं रह जाता, वह साधक के जीवन की शक्ति बन जाता है।

**वास्तव में मंत्र का रहस्य उसके शब्दों या अक्षरों में नहीं, बल्कि उस दिव्य चेतना में निहित है जो उसके सतत जप से जागृत होती है। जब यह चेतना प्रकट होती है, तब मंत्र साधक के भीतर सुप्त शक्तियों को जागृत कर देता है और उसका संपूर्ण व्यक्तित्व देवत्व की ओर अग्रसर होने लगता है।**

*गर्भे विद्या विकास चित्तोऽविशिष्ट स्वप्नः।।*

जब विद्या साधक के अन्तःकरण में गर्भ की भांति विकसित होने लगती है, तब उसका चित्त एक विशिष्ट स्वप्नवत् (दिव्य अनुभूतियों से युक्त) अवस्था को प्राप्त होता है।

अर्थात् जैसे गर्भ में शिशु धीरे-धीरे विकसित होता है, वैसे ही साधना से प्राप्त विद्या भी साधक के भीतर क्रमशः परिपक्व होती है। उस समय साधक का मन सामान्य नहीं रहता; उसे दिव्य संकेत, सूक्ष्म अनुभूतियां और अलौकिक स्वप्न प्राप्त होने लगते हैं।

*विद्यासमुत्थाने स्वभावे खेचरी शिवावस्था।।*

जब विद्या पूर्ण रूप से जागृत हो जाती है, तब साधक का स्वभाव स्वतः खेचरी अवस्था को प्राप्त होकर शिव स्वरूप में स्थित हो जाता है।

अर्थात् जब आत्मविद्या पूर्ण विकसित हो जाती है, **तब साधक का चित्त बाहरी विषयों में नहीं भटकता। वह स्वाभाविक रूप से उच्च चेतना में स्थित हो जाता है। यही खेचरी अवस्था है, जहां मन आकाशवत् व्यापक होकर शिवतत्त्व में लीन हो जाता है।** यह साधना की अत्यन्त उच्च अवस्था है, जिसमें साधक का स्वभाव ही शिवमय हो जाता है। इसकी प्राप्ति में श्वास पर ध्यान केंद्रित करना अनिवार्य है। **जब साधक का ध्यान श्वास पर स्थिर हो जाता है, तब वह धीरे-धीरे अखंड और अभंग बन जाता है। उस अवस्था में मन की चंचलता क्षीण होने लगती है, चित्त एकाग्र हो जाता है और ध्यान सहज रूप से अंतर्मुखी होकर साधना की गहराइयों में प्रवेश करने लगता है।**